PUNE RESEARCH TIMES ISSN 2456-0960
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY STUDIES VOL 7, ISSUE 2

भारतीय समाज में नारी का स्थान एवं और नइ जीवनशैली

डॉ. छाया आर. सुचक
समाजशास्त्र विभाग
विजयनगर आर्ट्स कॉलेज विजयनगर
गुजरात भारत

आधुनिक युग में नारी ने पुरुषों के समकक्ष स्थान एवं अधिकार पाने के लिए कई स्त्री आन्दोलनों एवं संगठनों को जन्म दिया है । दुनिया के दूसरे देशों में स्त्री स्वातन्त्र्य आन्दोलन चले और स्त्रियों को अपने अधिकार पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा । भारतीय समाज भी एक पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को माने वाला समाज है जिसमें स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर की चहरादीवारी तक ही सीमित रहा है । आर्थिक रूप से वे सदैव पुरुषों पर निर्भर रही हैं तथा उन्हों शिक्षा एवं बाह्य जगत् से भी दूर रखा गया है । किन्तु पिछले कुछ वर्षो से भारत में कई महिला संगठन बने हैं, प्रमुख रूप से नगरों में । इन संगठनों ने कई मुद्दे उठाए हैं तथा उनको लेकर आन्दोलन एवं प्रदर्शन भ किए गए हैं । इन मुद्दों में प्रमुख हैं - बढ़ती हुई महँगाई, पुरुषों के समान स्त्रियों को अधिकार देने तथा दहेज के कारण महिलाओं को जला देने या प्रताड़ित करना, बलात्कार, शोषण, हत्या, स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार एवं उन्हें बेइज्जत करना तथा पुलिस की ज्यादतियाँ आदि । इन माँगों के समर्थन में प्रदर्शनों, संगठनों एवं कार्यक्रमों में भाग लेने वाली अधिकांश महिलाएँ मध्यवर्गीय ही हैं । इनमें से कई कामकाजी महिलाएँ हैं । महिलाओं ने बाहर ही नहीं परिवार में भी समानता एवं अपने अधिकारों की माँग की है । शिक्षित एवं स्वयं अर्जन करने वाली महिलाएँ अब पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं, वे क्लबों में जाने लगी हैं तथा विवाह-साथी के चयन में अपनी पसन्द या नापसन्द को अधिक महत्व देती हैं, पहले की तरह इन पर कोई भी व्यक्ति जीवन-साथी के रूप में थोपा नहीं जाता । पारिवारिक निर्णयों में उनकी सलाह ली जाती है । इस प्रकार अब महिलाएँ धीरे-धीरे सास-ससुर एवं

परिवार की दासता से मुक्त हो रही हैं, यद्यपि अब भ कई बार कमाकर स्त्री अपनी कमाई सास-ससुर के हाथों में ही देती हैं ।

राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं महिला संगठनो ने नारी चेतना पैदा करने एवं उन्हें अपने अधिकारों से अवगत कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । इसी के परिणामस्वरूप सन् 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित करिया गया । सन् 1971 में भारत सरकार ने स्त्रियों की प्रस्थिति के बारे में एक समिति गठित की, जिसने 1974 में स्त्रियों की उन्नति के बारे में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिनका सर्वत्र स्वागत किया गया । स्त्रियों की समस्याओं एवं उनके समाधान हेतु एक अखिल भारतीय संगठन भी है । अनेक राज्यों में महिला विकास निगम स्थापित किए गए हैं जो महिलाओं को तकनीकी परामर्श देने तथा बैंक तथा अन्य संस्थानों से ऋण दिलाने एवं बाजार की सुविधा दिलाने का प्रयत्न करते हैं । भारत में महिला उद्यमिता में भी प्रगति हुई है और आज अनेक महिलाएं अपने स्वयं के कारखाने एवं उद्योग चला रही हैं । आज अनेक महिलाए सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों में कार्यरत हैं, वे प्रशासक, राजनेता एवं उच्च राजकीय सेवाओं में पुरुषों के समकक्ष ही कार्य कर रही हैं ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध एवं व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचानः

इसी सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या पुरुषों से स्त्रियों की स्वतन्त्र पहचान सम्भव है ? इस प्रश्न का उत्तर सैद्धान्तिक द्रष्टि से हाँ में दिया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में नहीं । भारतीय समाज में स्त्री को स्वतन्त्र होने योग्य नहीं माना गया है और पुरुषों के अभाव में उनका अपना कोई अस्तित्व नहं है । धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं हैं । बचपन में पिता, युवावस्था में पति एवं वृद्धावस्था में उन्हें पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए । इस प्रकार हमारे यहाँ स्त्री की पहचान पुत्री, पत्नी और माँ के रूप में की गई है । यह बात यूरोप एवं चीन में भी स्वीकार की गई है ।

पूँजीवाद में मजदूर - मालिकों के बीच शोषणकारी सम्बन्धों की कल्पना की गई है । समाजवादियों का मत है कि स्त्रियों पर पुरुषों का आधिपत्य का सम्बन्ध भी पूँजीवादी समाज के लक्षण हैं । समाजवादी समाज में ही वे इस बन्धन से मुक्त होकर पुरुषों के समकक्ष

लायी जा सकती हैं । स्त्रियों का पुरुषों के अधीन होने का एक कारण उनकी पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता माना जाता है, किन्तु यह बात भी पूरी तरह सच नहीं है क्योंकि गाँवों में निम्न वर्ग की स्त्रियाँ जो खेती एवं मजदूरी करके अर्जन करती हैं, वे भी पुरुषों के अधीन ही हैं । स्त्रियों को पराधीन बनाने वाली संस्था केवल पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था की नहीं है, वरन् सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था है जिसमें स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार किया जाता है । पुरुषों का अहंवाद भी इसके लिए उत्तरदायी है ।

बड़े-बड़े नगरों, जैसे - मुम्बई, पुणे, दिल्ली आदि में चार उद्देश्यों को लेकर महिला आन्दोलन चनाए गए हैं, वे हैं - (1) स्त्रियों में जागरूकता पैदा करा, उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाना तथा परिवार में दमन और अश्लील साहित्य एवं पोस्टरों का विरोध करना, (2) महिलाओं के जीवन-स्तर और कार्य-दशाओं में परिवर्तन लाना, वेतन-वृद्धि, प्रसूताओं को अवकाश एवं चिकित्सा की सुविधाएँ देना आदि, (3) अपने काम के लिए गृहणियों को सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ-साथ प्रतिफल प्रदान करना, (4) राजनीतिक दमन, मकानों की समस्या त था कीमतों में वृद्धि के विरुद्ध महिलाओं को संगठित करना । किन्तु ये सभी प्रश्न नगरीय महिलाओं से ही सम्बन्धित हैं, ग्रामीण महिलाओं के सन्दर्भ में बहुत कम ही प्रयास हुए हैं ।

महिला आन्दोलनों का संगठन एवं संचालन प्रमुखतः नगरीय सफेदपोश मध्यमवर्गीय महिलाओं एवं कामकाजी महिलाओं द्वारा किया गया है । इनके द्वारा महिला पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं तथा महिला सभाओं एवं गोष्ठियों का आयोजन भी किया जाता है । स्त्रियों से सम्बन्धित अनेक अध्ययन भी हुए हैं जिनमें स्त्रियों की प्रस्थिति, परिवार में उनकी भूमिका, शिक्षा, उनकी आर्थिक व कानूनी प्रस्थिति एवं राजनीतिक भागीदारी, स्त्रियों की अधीनता के कारण, कार्य सहभागिता, आन्दोलनों में भूमिका, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ आदि विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त की गई हैं ।

भारत में स्त्री की एक व्यक्ति के रूप में पहचान इन सब प्रयत् के बावजूद भी नहीं हो पायी है । परिवार में आज भी उसे एक पुत्री, पत्नी, माँ, सास एवं पुत्र-वधू के रूप में पहचाना जाता है न कि एक व्यक्ति के रूप में । भारतीय महिला के परिवार के बाहर उन्हीं लोगों से सम्बन्ध है जिनसे परिवार के हैं अर्थात् परिवार के मित्र एवं सम्बन्धी स्त्री के लिए

भी वही हैं जो उसे पुरुषों द्वारा परिवार द्वारा प्रदत्त किए गए हैं । परिवार से हटकर उसकी स्वयं की पसन्द के न कोई मित्र हैं न सम्बन्धी । उसको परिवार एवं पति की इच्छा का सम्मान करना पड़ता है । विवाह-साथी के चयन में भी उसकी स्वयं की मर्जी अधिक नहीं चलती । दहेज के लिए ससुराल में उसे प्रताड़ित किया जाता है तथा जलाने एवं यातनाएँ देने के मामले भी प्रकाश में आए हैं । संयुक्त परिवार में उसकी स्थिति पुत्र-वधू के रूप में लगभग एक 'बाहरी व्यक्ति' या 'दासी' जैसी ही रही है तथा सास और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसके सम्बन्ध तनावपूर्ण एवं अधीनता के ही रहे हैं । अनुलोम विवाह की प्रथा के कारण उसे उच्च कुल में ब्याहने की लासा ने भी उसकी व्यक्ति के रूप में पहचान खोयी है । अनुलोम विवाह के कारण वर-मूल्य बढ़ जाता है और दहेज के कारण स्त्री की स्थिति निम्न हो जाती है । अनुलोम विवाह के कारण सफेदपोश व्यवसायों, जैसे-डॉक्टर, वकील, न्यायाधीश, प्रशासनिक अधिकारी, इन्जीनियर एवं प्राध्यापक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कों की माँग बढ़ी है ।

पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा, रोजगार एवं स्वास्थ्य के बारे में भी कम ध्यान दिया जाता है । भारत में परुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु दर भी अधिक है, अतः स्त्री-पुरुष अनुपात में स्त्रियों की कमी पायी जाती है । इन सबके लिए हमारी पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था, पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था तथा सदियों से चली आ रही सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत भी उत्तरदायी है ।

स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं एक व्यक्ति में उसकी पहचान के लिए भारतीय संविधान में धर्म, रंग, जाति एवं लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त करने की बात कही गई है । विवाह, तलाक, दहेज, बलात्कार, सती – प्रथा, सम्पत्ति उत्तराधिकार, समान वेतन, अनैतिक व्यापार निषेध एवं गोद लेने से सम्बन्धित अनेक अधिनियम बनाए गए हैं जो स्त्रियों के पक्ष में हैं, किन्तु ये अधिनियम अधिक कारगक सिद्ध नहीं हुए हैं । कई महिला एवं सार्वजनिक मंचों से भी स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष अधिकार दिलाने एवं उन पर अत्याचार रोकने के लिए आवाज उठायी गयी है फिर भी स्त्रियों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई हैं ।

किन्तु इस स्थिति के लिए केवल पुरुष को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता । एक मत य है कि स्त्रियाँ ही स्त्रियों की प्रगति में बाधक हैं और उन पर किए जानेवाले अत्याचारों के लिए स्वयं ही दोषी हैं

। दहेज के लिए बहू को जलाने या प्रताड़ित करने में सास मुख्य रूप से दोषी रही है, परिवार में बहू एवं पुत्री को अधिकारों से वंचित करने एवं नियन्त्रण लादने में सास एवं माँ के रूप में स्त्री ही जिम्मेदार है ।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु उन्हें शिक्षा, प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे, उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना पैदा करनी होगी, शोषण एवं दमन के विरुद्ध उन्हें संगठित होकर संघर्ष करना होगा, परिवार एवं समाज में उन्हें पुरुष से पृथक् अपनी एक व्यक्ति के रूप में पहचान बनानी होगी ।

क्या राजनीति और लोक-जीवन में स्त्रियों का प्रवेश वांछनीय हैः

स्त्रियों की विभिन्न क्षेत्रों में बदली हुई स्थिति को देखकर कुछ व्यक्ति क्षुब्ध हुए हैं तो कुछ ने प्रसन्नता प्रकट की है । इस सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता है कि क्या नारी को लोक-जीवन, सार्वजनिक-जीवन और राजनीतिक गतिविधियों में भागलेना चाहिए, अथवा नहीं । अन्य शब्दों में, लोक-जीवन में उनका प्रवेश वांछनीय है या नहीं ? इस बारे में दो मत पाए जाते हैं - एक मत उनके लोक-जीवन में प्रवेश के विपक्ष में है और दूसरा पक्ष में । जो लोग विपक्ष में हैं उनका कहना है कि - (1) स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर है, उन्हें पति सेवा तथा बच्चों के लालन-पालन आदि का कार्य कर अच्छे परिवार के निर्माण में योग देना चाहिए, क्योंकि परिवार ही समाज का आधार है । सार्वजनिक कार्य करने पर घर की उपेक्षा होगी, बच्चों का समुचित पालन-पोषण नहीं होगा, वे अनियन्त्रित वं आवारा हो जायेंगे और रिवार विघटित होगा । (2) राजनीति और लोक-जीवन में भाग लेने पर स्त्रियों में यौन स्वच्छन्दता एवं अनैतिकता फैलेगी । (3) परिवार की धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन सुचारु रुप से नहीं हो सकेगा । (4) स्त्रियाँ कोमल स्वभाव की होने से बाहय जीवन की कठोरता एवं कठिनाइयों सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकेंगी । (5) चूँकि स्त्रियाँ प्रजनन के कार्य से सम्बन्धित हैं, अतः सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की उनकी सीमा है । (6) स्त्रियों का लोक-जीवन में भाग लेना भारतीय सामाजिक मूल्यों के विपरीत है । (7) कई व्यक्ति स्त्रियों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को पुरुषों से निम्न मानते हैं, अतः वे उचित निर्णय लेने में असमर्थ होती हैं ।

इन सभी दलीलों के आधार पर कुछ व्यक्ति स्त्रियों के लोक-जीवन में प्रवेश को अवांछनीय मानते हैं ।

दूसरी ओर कई व्यक्ति स्त्रियों के राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश के पक्ष में हैं । उनका मत है कि आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों को सौंपे गए दायित्वों का यदि हम मूल्यांकन करें तो पाएँगे कि उन्होंने सराहनीय कार्य किए हैं, तथा कई क्षेत्रों में तो वे पुरुषों से बढ़कर योगदान दे पायी हैं । वे इस बात को उचित नहीं मानते हैं कि स्त्रियों के राजनीतिक और लोक-जीवन में प्रवेश करने से परिवार विघटित हो जाएगा । परिवार का संचालन एवं संगठ केवल स्त्री का कार्य ही नहीं है, वरन स्त्री व पुरुष दोनों का है । रूढ़िवादी सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए स्त्रियों को राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश की इजाजत न देना भी पिछड़ेपन का सूचक है, यह पुरुषों की स्वार्थी-प्रवृत्ति एवं शोषण की नीति को प्रकट करता है । वर्तमान में प्रजातन्त्रीय विचारों की माँग है कि स्त्री-पुरुषों को समान अधाकिर प्राप्त हों । यदि स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करेंग तो वे समाज को अनेक कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों, आडम्बरों, रूढ़ियों आदि से मुक्त कर सकेंगी और परिवार तथा समाज की बदलते समय की माँग के अनुरूप सेवा कर सकेंगी । राजानीति में आने पर वे अपने अधिकारों की रक्षा अच्छी प्रकार से कर सकेंगी । वास्तव में, नवीन परिस्थितियों को देखते हुए स्त्रियों का राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश वांछनीय है । किन्तु इस कारण स्त्रियाँ इतनी स्वच्छन्द न हो जाएँ कि वे अपना सन्तुलन खोकर पथ-भ्रष्ट हो जाएँ ।

संदर्भः

1. महिलाओं के प्रति अपराध, प्रज्ञा शर्मा, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (राज.)
2. www.googlereserch